

CHAPTER-39

भाषा-परिहार की अवधारणा: हिंदी साहित्य, शिक्षा और सामाजिक न्याय

The Concept of Language Avoidance: Hindi Literature, Education, and Social Justice

Dr. V. Govind Jadhav

Hindi Department,

Faculty of Humanities and Languages, Central University of Karnataka, Kalaburagi

jadavgovind001@gmail.com

<https://doi.org/10.66483/jsp.2026.001.ch39>

सार (ABSTRACT)

यह शोधपत्र भाषा-परिहार की अवधारणा का गहन एवं समग्र विश्लेषण हिंदी साहित्य, भारतीय शिक्षा व्यवस्था तथा सामाजिक न्याय के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। भारत एक बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और बहुवर्गीय समाज है, जहाँ भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम न होकर सामाजिक पहचान, सत्ता और अवसरों से गहराई से जुड़ी हुई है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो भाषा-आधारित भेदभाव ने समाज के वंचित, हाशिए पर स्थित और पिछड़े वर्गों को शिक्षा, प्रशासन तथा सांस्कृतिक विमर्श से दूर रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में भाषा-परिहार की अवधारणा एक ऐसी वैचारिक और व्यावहारिक प्रक्रिया के रूप में उभरती है, जो भाषा को सामाजिक और शैक्षणिक बाधा बनने से रोकने का प्रयास करती है।

भाषा-परिहार का मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी भी व्यक्ति या समुदाय को उसकी भाषिक पृष्ठभूमि के कारण अवसरों से वंचित न किया जाए। यह अवधारणा भाषा की जटिलता, दुरुहता और प्रभुत्ववादी स्वरूप को चुनौती देती है तथा सरल, समावेशी और संवादपरक भाषा-प्रयोग को प्रोत्साहित करती है। शिक्षा व्यवस्था में भाषा-परिहार का महत्व विशेष रूप से रेखांकित होता है, क्योंकि कठिन, अभिजात्य या एकांगी भाषा विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में बाधा बन सकती है। यदि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाए, जो विद्यार्थियों के अनुभव, सामाजिक पृष्ठभूमि और भाषिक क्षमता से जुड़ी हो, तो शिक्षा अधिक लोकतांत्रिक, प्रभावी और न्यायपूर्ण बन सकती है।

हिंदी साहित्य ने प्रारंभ से ही भाषा-परिहार की भावना को अपने भीतर समाहित किया है। भक्तिकाल से लेकर आधुनिक और समकालीन साहित्य तक, हिंदी साहित्य ने जनभाषा को अपनाकर वंचित वर्गों की पीड़ा, संघर्ष और आकांक्षाओं को स्वर दिया है। कबीर, तुलसी, प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, फणीश्वरनाथ 'रेणु' और दलित साहित्यकारों की रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि सरल, सजीव और लोक-संवेदी भाषा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन सकती है। साहित्य में भाषा-परिहार केवल शैलीगत प्रयोग नहीं, बल्कि सामाजिक सरोकारों से जुड़ा एक सशक्त औजार है, जो सत्ता-केंद्रित भाषा के वर्चस्व को तोड़ता है।

सामाजिक न्याय के संदर्भ में भाषा-परिहार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब कानून, शासन और सार्वजनिक विमर्श की भाषा जनसाधारण के लिए सुगम होती है, तब नागरिकों की सहभागिता बढ़ती है और लोकतांत्रिक मूल्य सुदृढ़ होते हैं। भाषा-परिहार समानता, समावेशन और गरिमा के सिद्धांतों को व्यवहार में उतारने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार, यह अध्ययन निष्कर्षित करता है: भाषा-परिहार को केवल भाषिक रणनीति नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, शैक्षिक समानता और लोकतांत्रिक चेतना को सशक्त करने वाला एक प्रभावी माध्यम स्थापित करता है।

1 कार्य की पृष्ठभूमि (Background of Work)

भारत में भाषा और सत्ता का संबंध ऐतिहासिक रूप से अत्यंत गहरा और बहुआयामी रहा है। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासन ने अंग्रेजी भाषा को प्रशासन, शिक्षा और न्याय व्यवस्था का प्रमुख माध्यम बनाकर उसे सत्ता के केंद्रीकरण का उपकरण बनाया। लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति ने भारतीय भाषाओं को हीन और अंग्रेजी को श्रेष्ठ ठहराया, जिसके परिणामस्वरूप भाषा के आधार पर सामाजिक और बौद्धिक वर्गीकरण को बढ़ावा मिला। अंग्रेजी ज्ञान को योग्यता, आधुनिकता और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बना दिया गया, जबकि हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यापक जनसमूह को अवसरों की दौड़ में पीछे छोड़ दिया गया। इस प्रकार भाषा सत्ता और विशेषाधिकार का साधन बन गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह अपेक्षा की गई थी कि भारतीय भाषाओं को शिक्षा, प्रशासन और सार्वजनिक जीवन में उचित स्थान मिलेगा। यद्यपि संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया तथा अन्य भारतीय भाषाओं को भी संरक्षण प्रदान किया गया, फिर भी व्यावहारिक स्तर पर अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहा। उच्च शिक्षा, अनुसंधान, न्यायपालिका, प्रशासनिक सेवाओं और कॉर्पोरेट क्षेत्र में अंग्रेजी की प्रधानता ने भाषिक असमानताओं

को और अधिक गहरा कर दिया। परिणामस्वरूप ग्रामीण, पिछड़े और वंचित वर्गों के विद्यार्थी, जो हिंदी या अन्य मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षित होते हैं, प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया में स्वयं को असहज और हाशिए पर स्थित अनुभव करने लगे।

इसी पृष्ठभूमि में भाषा-परिहार की अवधारणा की आवश्यकता और प्रासंगिकता स्पष्ट रूप से सामने आती है। भाषा-परिहार का आशय केवल अंग्रेजी का विरोध नहीं है, बल्कि ऐसी भाषिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें भाषा ज्ञान और अवसरों तक पहुँच में बाधा न बने। यह अवधारणा भाषा को सत्ता का उपकरण बनने से रोककर उसे संप्रेषण, समावेशन और सहभागिता का माध्यम बनाने पर बल देती है। शिक्षा व्यवस्था में भाषा-परिहार का उद्देश्य यह है कि पाठ्यक्रम, शिक्षण-पद्धति और मूल्यांकन प्रक्रिया ऐसी हो, जो विविध भाषिक पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थियों के लिए समान रूप से सुगम और न्यायपूर्ण हो। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में भाषा-परिहार का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि ये भाषाएँ जनसाधारण की अनुभूतियों, संस्कृति और सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ी हुई हैं। जब ज्ञान का संप्रेषण ऐसी भाषा में होता है, जिसे विद्यार्थी सहज रूप से समझ सकें, तो शिक्षा केवल सूचना का संचरण न रहकर चेतना और सशक्तिकरण का माध्यम बन जाती है। इसके विपरीत, दुरुह और अभिजात्य भाषा शिक्षा को सीमित वर्गों तक ही सीमित कर देती है।

सामाजिक न्याय के व्यापक परिप्रेक्ष्य में भी भाषा-परिहार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाषा के कारण उत्पन्न असमानताएँ सामाजिक गतिशीलता को बाधित करती हैं और लोकतांत्रिक सहभागिता को कमजोर करती हैं। यदि शासन, कानून और शैक्षणिक विमर्श की भाषा समावेशी और जनसुलभ हो, तो समाज के सभी वर्ग अपनी बात प्रभावी ढंग से रख सकते हैं। इस प्रकार, औपनिवेशिक विरासत और स्वतंत्रता पश्चात की भाषिक असमानताओं की पृष्ठभूमि में भाषा-परिहार एक आवश्यक वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है, जो समानता, अवसर और सामाजिक न्याय की दिशा में सार्थक पहल प्रस्तुत करता है।

2 परिचय (Introduction)

भाषा मनुष्य के सामाजिक जीवन की आधारशिला है। यह केवल विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि व्यक्ति की पहचान, उसकी सांस्कृतिक जड़ों और सामाजिक स्थिति का भी निर्धारण करती है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने अनुभवों को साझा करता है, ज्ञान का अर्जन करता है और समाज के साथ संवाद स्थापित करता है। प्रत्येक समाज में भाषा एक सशक्त सामाजिक उपकरण के रूप में कार्य करती है, जो न केवल संप्रेषण को संभव बनाती है, बल्कि सत्ता, ज्ञान और अवसरों के वितरण को भी प्रभावित करती है। इस कारण भाषा को एक तटस्थ माध्यम मानना उचित नहीं होगा, क्योंकि इसका प्रयोग कई बार समावेशन के साथ-साथ बहिष्करण का भी कारण बन जाता है।

जब भाषा समाज में समान अवसरों के द्वार खोलने के स्थान पर अवरोध उत्पन्न करने लगे, तब भाषा-परिहार की अवधारणा सामने आती है। भाषा-परिहार का आशय भाषा को त्यागना नहीं, बल्कि उसके ऐसे प्रयोग से बचना है, जो किसी वर्ग, समुदाय या व्यक्ति को वंचित करता हो। यह अवधारणा इस तथ्य को स्वीकार करती है कि भाषा का अत्यधिक जटिल, अभिजात्य या प्रभुत्ववादी रूप समाज में असमानताओं को जन्म देता है। अतः भाषा-परिहार एक ऐसी वैचारिक प्रक्रिया है, जो भाषा को सरल, समावेशी और संवादपरक बनाकर उसे समान अवसरों का माध्यम बनाने का प्रयास करती है।

भारतीय समाज के संदर्भ में भाषा और सामाजिक संरचना का संबंध विशेष रूप से जटिल है। भारत की बहुभाषिक प्रकृति में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ विद्यमान हैं, जो विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमियों से जुड़ी हुई हैं। यहाँ भाषा केवल संवाद का साधन नहीं, बल्कि जाति, वर्ग, क्षेत्र और सत्ता से भी जुड़ी हुई है। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी भाषा को श्रेष्ठ और भारतीय भाषाओं को हीन ठहराने की प्रवृत्ति ने भाषा-आधारित असमानताओं को और अधिक गहरा कर दिया। स्वतंत्रता के पश्चात भी यह प्रवृत्ति पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकी, जिसके परिणामस्वरूप आज भी शिक्षा, प्रशासन और रोजगार के क्षेत्रों में भाषिक असंतुलन दिखाई देता है।

शिक्षा व्यवस्था में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति को आत्मनिर्भर, विवेकशील और सामाजिक रूप से जागरूक बनाना है। किंतु जब शिक्षा की भाषा विद्यार्थियों के अनुभव और भाषिक क्षमता से मेल नहीं खाती, तब वह ज्ञान के स्थान पर भय और हीनता का भाव उत्पन्न करती है। हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को अक्सर अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण स्वयं को कम सक्षम अनुभव करना पड़ता है। इस स्थिति में भाषा-परिहार एक ऐसी आवश्यकता बन जाती है, जो शिक्षा को अधिक लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में मार्ग प्रशस्त करती है।

हिंदी साहित्य इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। हिंदी साहित्य ने सदैव जनभाषा को महत्व देकर समाज के वंचित और उपेक्षित वर्गों की आवाज़ को अभिव्यक्ति प्रदान की है। भक्तिकाल के संत कवियों ने संस्कृत जैसी अभिजात्य भाषा के स्थान पर लोकभाषा को अपनाकर सामाजिक समानता और मानवीय मूल्यों का संदेश दिया। आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रेमचंद, निराला, रेणु और समकालीन दलित एवं स्त्री लेखकों ने भाषा को जनसुलभ बनाकर सामाजिक यथार्थ को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। इस प्रकार हिंदी साहित्य में भाषा-परिहार केवल भाषिक प्रयोग नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और परिवर्तन का सशक्त माध्यम रहा है।

<https://jnanasetupress.com/>

Bharatiya Bhasha Pariwar: A New Framework in Linguistics

<https://doi.org/10.66483/jsp.2026.001>

सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में भाषा-परिहार की अवधारणा और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। सामाजिक न्याय का अर्थ केवल कानूनी समानता नहीं, बल्कि अवसरों की समानता भी है। यदि भाषा ही किसी व्यक्ति के लिए शिक्षा, रोजगार या न्याय तक पहुँचने में बाधा बन जाए, तो सामाजिक न्याय का उद्देश्य अधूरा रह जाता है। शासन, कानून और सार्वजनिक विमर्श की भाषा जब तक जनसाधारण के लिए सुगम नहीं होगी, तब तक लोकतांत्रिक सहभागिता सीमित ही रहेगी। भाषा-परिहार इस दिशा में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है, जो सत्ता की भाषा को जनभाषा के निकट लाने का प्रयास करता है।

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में भाषा-परिहार की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। एक ओर अंग्रेजी को वैश्विक संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर इससे भाषिक असमानताएँ भी बढ़ रही हैं। इस संदर्भ में भाषा-परिहार का उद्देश्य किसी भाषा का विरोध करना नहीं, बल्कि बहुभाषिक सह-अस्तित्व को प्रोत्साहित करना है। यह अवधारणा इस बात पर बल देती है कि प्रत्येक भाषा को सम्मान और समान अवसर मिलना चाहिए, ताकि ज्ञान और विकास की प्रक्रिया में कोई भी वर्ग पीछे न रह जाए।

अतः यह शोध हिंदी साहित्य, शिक्षा और सामाजिक न्याय के अंतर्संबंधों को केंद्र में रखकर भाषा-परिहार की अवधारणा का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि भाषा-परिहार केवल भाषिक रणनीति नहीं, बल्कि एक सामाजिक और नैतिक दायित्व है। इसके माध्यम से न केवल शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी बनाया जा सकता है, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को भी सुदृढ़ किया जा सकता है। इस प्रकार भाषा-परिहार समकालीन भारतीय समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में उभरता है, जो समानता, गरिमा और सहभागिता की दिशा में सार्थक योगदान दे सकता है।

3 साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

भाषा और समाज के अंतर्संबंध पर किए गए अध्ययन और साहित्यिक विचार यह स्पष्ट करते हैं कि भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना, सत्ता, असमानता और शिक्षा से गहराई से जुड़ा हुआ है। हिंदी साहित्य और आलोचना के उल्लेखनीय विचारकों—प्रेमचंद, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह तथा समकालीन दलित साहित्यकारों—के चिंतन से यह समझना संभव होता है कि भाषा सामाजिक यथार्थ और न्याय के विमर्श में कैसे योगदान देती है। इसी क्रम में नई शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) ने बहुभाषिक शिक्षा की दिशा में नीतिगत पहल की है, जो भाषा-परिहार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है।

प्रेमचंद और भाषा-समाज का संबंध:

मुंशी प्रेमचंद न केवल भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि लेखक हैं, बल्कि उनके उपन्यासों व कहानियों में सामाजिक यथार्थ, वर्ग विभाजन, आर्थिक शोषण, जातिगत असमानता तथा नारी-स्थिति जैसे विषयों की जड़ तक पहुँच का प्रयास दिखाई देता है। प्रेमचंद ने जनभाषा का उपयोग कर, ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के अनुभवों को प्रत्यक्ष रूप से पाठकों तक पहुंचाया, जिससे समाज की वास्तविक समस्याएँ साहित्य में प्रकट हुईं और पाठक अपने ही समाज का प्रतिबिम्ब पढ़ने को मिला।

उनके उपन्यास *गोदान*, *गबन*, *कर्मभूमि* तथा *रंगभूमि* में भाषा-समाज संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इनमें भाषा का प्रयोग सरल, सजीव और जन-सुलभ है, जिससे आम जनता की आवाज़ को साहित्यिक विमर्श में सशक्त स्थान मिला। प्रेमचंद ने भाषा को साधारण लोगों के अनुभवों के अनुरूप स्थापित किया, जिससे साहित्य सामाजिक चेतना पैदा करने में सक्षम हुआ।

रामविलास शर्मा का भाषाई चिंतन:

डॉ. रामविलास शर्मा ने भाषा के सामाजिक विकास और समाजशास्त्र के संदर्भ में गहन चिंतन किया है। उनके ग्रंथ *भाषा और समाज* में भाषा की पारस्परिकता, सामाजिक विकास तथा भाषा-समाज के द्वंद्वों का विशद विवेचन मिलता है। रामविलास शर्मा ने भाषाशास्त्र और समाजशास्त्र के आधार पर यह स्पष्ट किया कि भाषा समाज की शक्ति संरचना, संस्कृति और पहचान को प्रभावित करती है, और भाषाई असमानताएँ सामाजिक असंतुलन को जन्म देती हैं। उनके विचारों में भारत की भाषा-राजनीति, राजभाषा की समस्या और बहुभाषिकता के विषय पर भी व्यापक विमर्श मिलता है, जो आज के बहुभाषिक समाज के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है।

नामवर सिंह और भाषा-आलोचना:

नामवर सिंह हिंदी आलोचना के एक दिग्गज विचारक रहे हैं, जिनका चिंतन भाषा-सामाजिक विमर्श को नए दृष्टिकोण प्रदान करता है। उन्होंने उपनिवेशवादी मानसिकता तथा भाषा की सत्ता परिदृश्य पर विचार करते हुए यह बताया कि कैसे भाषा ही कभी सत्ता की संरचना का हिस्सा बन जाती है और सामाजिक चेतना को प्रभावित करती है। उनके कार्यों ने भाषा-आलोचना को सिर्फ साहित्य-विश्लेषण के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्थापित किया। नामवर सिंह ने *Decolonising the Indian Mind* जैसे निबंधों

के माध्यम से यह विचार व्यक्त किया कि औपनिवेशिक भाषा-नीतियों से मुक्ति केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक चेतना का अंग भी है, जो भाषा के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों को उजागर करता है।

दलित साहित्य और भाषाई विमर्श:

दलित साहित्यकारों ने भाषा-समाज संबंध की समीक्षा में एक नवीन आयाम जोड़ा है। उनके लेखन में भाषा को दलित समुदाय की पहचान, अनुभव, शोषण और सामाजिक बहिष्करण के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दलित साहित्य भाषा के माध्यम से सामाजिक न्याय, अधिकार और समानता की आवाज उठाता है, जिससे पारंपरिक साहित्यिक विमर्श में शामिल न होने वाली सामाजिक असमानताओं पर केंद्रित दृष्टिकोण उभरता है। यह विमर्श यह स्पष्ट करता है कि भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना में सत्ता के वितरण, पहचान कायम करने तथा बहिष्कृत वर्गों की आवाज को सामने लाने का एक सक्रिय उपकरण है।

नई शिक्षा नीति 2020 और बहुभाषिक शिक्षा:

भारत की नई शिक्षा नीति 2020 ने बहुभाषिक शिक्षा को शिक्षा की मूल धारा में शामिल करने का प्रयास किया है। NEP 2020 के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा में विद्यार्थी की मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षा को प्राथमिकता देने की सलाह दी गई है, जिससे छात्रों के सीखने की क्षमता, अवधारणात्मक समझ और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा मिले। नीति ने तीन-भाषा सूत्र, बहुभाषिक शिक्षण तथा सांस्कृतिक विविधता को शिक्षा की संरचना में समाहित करने पर बल दिया है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में भाषा-आधारित असमानताओं को कम करने और शिक्षा में समावेशन को सुनिश्चित करने के प्रयास तेज हुए हैं।

2025-26 के शैक्षणिक सत्र में कई विश्वविद्यालयों द्वारा क्षेत्रीय भाषा कार्यक्रमों और बहुभाषिक पाठ्यक्रमों का एकीकरण देखा गया है, उदाहरण के लिए बुनियादी भाषा अध्ययन को शैक्षणिक पाठ्यक्रम में शामिल करना, तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में MBA जैसे पाठ्यक्रम पेश करना। इसके अतिरिक्त, UNESCO द्वारा जारी “*Bhasha Matters: State of the Education Report for India 2025*” में भी मातृभाषा और बहुभाषिक शिक्षा के लाभों को वैश्विक और राष्ट्रीय शिक्षा के दृष्टिकोण से रेखांकित किया गया है, जिससे भाषा-सम्बन्धी नीतियाँ और भी अधिक विस्तृत और समावेशी बन सकें।

निष्कर्ष:

साहित्यिक आलोचना, भाषा-समाज के दार्शनिक विचार, साहित्यिक विमर्श और नीतिगत दिशा—ये सभी संकेत करते हैं कि भाषा केवल भाषाई साधन नहीं, बल्कि सामाजिक पहचान, सत्ता और न्याय का महत्वपूर्ण आधार है। प्रेमचंद, रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे विचारकों ने भाषा-समाज के संबंध को साहित्यिक अभियान के रूप में प्रस्तुत किया है, जबकि NEP 2020 ने इसे वास्तविक शैक्षणिक और नीतिगत क्षेत्र में लागू करने का मार्ग प्रशस्त किया है। समग्र रूप से यह साहित्य समीक्षा यह दर्शाती है कि भाषा-परिहार न केवल एक साहित्यिक अवधारणा है, बल्कि सामाजिक न्याय, शिक्षा और सांस्कृतिक समावेशन के व्यापक आयामों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4 शोध पद्धति (Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक शोध पद्धति (Qualitative Research Method) पर आधारित है। इस शोध का उद्देश्य हिंदी साहित्य, शिक्षा व्यवस्था तथा सामाजिक न्याय के संदर्भ में भाषा-परिहार की अवधारणा का गहन, विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक अध्ययन करना है। चूँकि भाषा-परिहार एक सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक तथा शैक्षणिक प्रक्रिया से जुड़ी अवधारणा है, अतः इसके अध्ययन हेतु मात्र सांख्यिकीय या मात्रात्मक पद्धति पर्याप्त नहीं मानी जा सकती। इस कारण शोध में गुणात्मक पद्धति को उपयुक्त और प्रभावी माना गया है।

शोध की प्रकृति

यह अध्ययन मूलतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक (Descriptive and Analytical) प्रकृति का है। इसमें भाषा-परिहार की संकल्पना को ऐतिहासिक, सामाजिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। शोध में यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार भाषा सामाजिक सत्ता, वर्चस्व और बहिष्करण का माध्यम बनती रही है तथा कैसे भाषा-परिहार सामाजिक न्याय की दिशा में एक सकारात्मक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है।

शोध के स्रोत

प्रस्तुत शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक—दोनों प्रकार के स्रोतों का सम्यक उपयोग किया गया है।

(क) प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत हिंदी साहित्य के प्रमुख ग्रंथों को आधार बनाया गया है। इनमें विशेष रूप से:

- प्रेमचंद के उपन्यास और कहानियाँ

<https://jnanasetupress.com/>

Bharatiya Bhasha Pariwar: A New Framework in Linguistics

<https://doi.org/10.66483/jsp.2026.001>

- रामविलास शर्मा के भाषिक एवं आलोचनात्मक लेखन
 - नामवर सिंह के आलोचनात्मक निबंध एवं व्याख्यान
 - दलित साहित्यकारों (जैसे—ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, सुशीला टकभौर आदि) के रचनात्मक और वैचारिक ग्रंथ
- इन साहित्यिक कृतियों के माध्यम से यह अध्ययन किया गया है कि भाषा किस प्रकार सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करती है तथा वंचित वर्गों की चेतना को स्वर प्रदान करती है। प्राथमिक स्रोतों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य ने भाषा को जनसरोकारों से जोड़ते हुए सामाजिक न्याय के प्रश्न को निरंतर केंद्र में रखा है।

(ख) द्वितीयक स्रोत

द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत निम्नलिखित सामग्री का उपयोग किया गया है—

- UGC-CARE सूचीबद्ध शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध लेख
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जैसे नीति दस्तावेज़
- यूनेस्को की शिक्षा एवं भाषा संबंधी रिपोर्टें
- समकालीन आलोचनात्मक पुस्तकें और शोध प्रबंध
- प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में प्रकाशित शैक्षणिक लेख

द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से भाषा-परिहार की अवधारणा को समकालीन शैक्षणिक और नीतिगत विमर्श से जोड़ा गया है।

शोध उपकरण एवं तकनीक

इस अध्ययन में मुख्यतः पाठ-विश्लेषण (Textual Analysis), विमर्श-विश्लेषण (Discourse Analysis) तथा तुलनात्मक अध्ययन पद्धति (Comparative Method) को अपनाया गया है। साहित्यिक ग्रंथों और नीतिगत दस्तावेज़ों का सूक्ष्म पाठ किया गया है, जिससे भाषा के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक निहितार्थों को समझा जा सके।

पाठ-विश्लेषण के माध्यम से यह देखा गया है कि किस प्रकार साहित्य में प्रयुक्त भाषा सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध का माध्यम बनती है। वहीं विमर्श-विश्लेषण के द्वारा भाषा और सामाजिक संरचना के बीच अंतर्संबंधों की पहचान की गई है।

अध्ययन की सीमाएँ

यह शोध मुख्यतः हिंदी साहित्य और भारतीय शिक्षा व्यवस्था तक सीमित है। इसमें अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन व्यापक रूप में नहीं किया गया है। साथ ही, यह अध्ययन पूर्णतः गुणात्मक प्रकृति का होने के कारण सांख्यिकीय आँकड़ों पर आधारित निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करता। तथापि, शोध के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह सीमाएँ बाधक नहीं हैं।

शोध की प्रामाणिकता

शोध की प्रामाणिकता बनाए रखने के लिए केवल प्रामाणिक, समीक्षित एवं अकादमिक रूप से स्वीकृत स्रोतों का ही चयन किया गया है। उद्धरण एवं संदर्भ UGC-CARE एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दिशा-निर्देशों के अनुसार प्रस्तुत किए गए हैं।

निष्कर्षात्मक दृष्टि

इस प्रकार प्रस्तुत शोध पद्धति भाषा-परिहार की अवधारणा को एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है। गुणात्मक शोध पद्धति के माध्यम से यह अध्ययन न केवल साहित्यिक विमर्श को समृद्ध करता है, बल्कि शिक्षा एवं सामाजिक न्याय के क्षेत्र में भाषा की भूमिका को नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास करता है। यह शोध पद्धति भविष्य के अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी एक वैचारिक और पद्धतिगत आधार प्रस्तुत करती है।

5 शोध निष्कर्ष (Results)

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि भाषा केवल संप्रेषण का साधन न होकर सामाजिक संरचना, अवसरों के वितरण तथा न्याय की अवधारणा से गहराई से जुड़ी हुई है। अध्ययन में यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि भाषा-परिहार की अवधारणा को अपनाने से शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सहभागिता के क्षेत्रों में समान अवसरों की संभावनाएँ सुदृढ़ होती हैं। विशेष रूप से हिंदी साहित्य और समकालीन शैक्षणिक नीतियों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि भाषा-आधारित भेदभाव सामाजिक असमानता का एक प्रमुख कारक रहा है।

• भाषा-परिहार और शिक्षा में समानता

अध्ययन के परिणाम यह दर्शाते हैं कि जब शिक्षा प्रणाली में किसी एक भाषा का वर्चस्व स्थापित हो जाता है, तब सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के लिए ज्ञानार्जन की प्रक्रिया कठिन हो जाती है। भाषा-परिहार की नीति अपनाने से विद्यार्थी अपनी मातृभाषा अथवा परिचित भाषा में शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं, जिससे उनकी बौद्धिक क्षमता, आत्मविश्वास और सीखने की गति में वृद्धि होती है। इस शोध में यह पाया गया है कि मातृभाषा आधारित शिक्षा विद्यार्थियों की अवधारणात्मक स्पष्टता को मजबूत करती है तथा विद्यालय त्याग की दर को कम करने में सहायक सिद्ध होती है।

• रोजगार के क्षेत्र में भाषा-परिहार की भूमिका

शोध निष्कर्षों के अनुसार भाषा-आधारित असमानताएँ केवल शिक्षा तक सीमित नहीं हैं, बल्कि रोजगार के अवसरों को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि जब भर्ती प्रक्रियाओं और कार्यस्थलों में किसी विशेष भाषा का अनावश्यक वर्चस्व रहता है, तब अनेक योग्य अभ्यर्थी अवसरों से वंचित रह जाते हैं। भाषा-परिहार की अवधारणा रोजगार के क्षेत्र में समान अवसरों की स्थापना में सहायक बन सकती है, क्योंकि इससे योग्यता और दक्षता को भाषा से ऊपर स्थान मिलता है।

- **हिंदी साहित्य और सामाजिक न्याय**

हिंदी साहित्य के अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि साहित्य ने भाषा-आधारित भेदभाव को उजागर करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। प्रेमचंद, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह तथा दलित साहित्यकारों की रचनाओं में भाषा को सामाजिक संघर्ष और प्रतिरोध के माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हिंदी साहित्य ने न केवल वंचित वर्गों की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है, बल्कि भाषा को जनसाधारण के अनुभवों से जोड़कर सामाजिक चेतना को सशक्त किया है।

- **भाषा और सामाजिक पहचान**

शोध निष्कर्ष यह भी संकेत देते हैं कि भाषा सामाजिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब किसी समुदाय की भाषा को हाशिए पर रखा जाता है, तो उस समुदाय की सांस्कृतिक पहचान भी कमजोर पड़ती है। भाषा-परिहार की अवधारणा भाषाई विविधता को स्वीकार कर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देती है। इससे विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संवाद और सहअस्तित्व की भावना मजबूत होती है।

- **शैक्षणिक नीतियों का प्रभाव**

अध्ययन में यह भी पाया गया है कि नई शिक्षा नीति 2020 जैसी नीतियाँ भाषा-परिहार की दिशा में सकारात्मक पहल करती हैं। बहुभाषिक शिक्षा, मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा और स्थानीय भाषाओं को महत्व देने से शिक्षा प्रणाली अधिक समावेशी बनती है। इसके परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों के बीच शैक्षणिक अंतर को कम करने में सहायता मिलती है।

- **भाषा-आधारित भेदभाव का अनावरण**

शोध निष्कर्षों के अनुसार हिंदी साहित्य और आलोचना ने भाषा-आधारित भेदभाव को न केवल उजागर किया है, बल्कि उसके विरुद्ध वैचारिक संघर्ष भी प्रस्तुत किया है। दलित साहित्य विशेष रूप से भाषा को प्रतिरोध और आत्मसम्मान के साधन के रूप में प्रस्तुत करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भाषा-परिहार केवल शैक्षणिक या प्रशासनिक नीति नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की एक सशक्त अवधारणा है।

- **समग्र निष्कर्ष**

समग्र रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भाषा-परिहार की अवधारणा शिक्षा और रोजगार में समान अवसरों की स्थापना में सहायक है। हिंदी साहित्य ने सामाजिक न्याय की चेतना को सुदृढ़ करते हुए भाषा-आधारित भेदभाव को उजागर किया है। यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि भाषा-परिहार न केवल साहित्यिक विमर्श का विषय है, बल्कि सामाजिक समावेशन, सांस्कृतिक विविधता और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए एक आवश्यक कदम है।

6 चर्चा (Discussion)

भाषा-परिहार की अवधारणा को यदि केवल प्रशासनिक सुविधा या तकनीकी प्रबंधन के रूप में देखा जाए, तो इसके व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक आयामों की अनदेखी हो जाती है। प्रस्तुत अध्ययन की चर्चा इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि भाषा-परिहार मूलतः सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त उपकरण है, जो शिक्षा, साहित्य, प्रशासन और सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समानता और समावेशन की प्रक्रिया को सुदृढ़ कर सकता है। भारत जैसे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश में भाषा का प्रश्न केवल संवाद तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह सत्ता, पहचान और अवसरों के वितरण से गहराई से जुड़ा होता है।

औपनिवेशिक काल से ही भारत में भाषा का प्रयोग सत्ता के उपकरण के रूप में किया गया। अंग्रेजी भाषा को प्रशासन, शिक्षा और ज्ञान के उच्च स्तर से जोड़ दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाले वर्गों को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से हाशिए पर धकेल दिया गया। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भाषा-परिहार की अवधारणा एक प्रतिरोधात्मक विमर्श के रूप में उभरती है, जो भाषा को बाधा बनने से रोकने और सभी भाषाई समुदायों को समान अवसर प्रदान करने का प्रयास करती है।

हिंदी साहित्य इस सामाजिक विमर्श में केंद्रीय भूमिका निभाता है। प्रेमचंद से लेकर समकालीन दलित साहित्यकारों तक, हिंदी साहित्य ने भाषा को जनसाधारण की अनुभूतियों, संघर्षों और आकांक्षाओं से जोड़ा है। साहित्य में प्रयुक्त जनभाषा ने उन वर्गों को अभिव्यक्ति का अवसर दिया, जिन्हें लंबे समय तक शास्त्रीय और अभिजात्य भाषाई संरचनाओं में स्थान नहीं मिल सका। इस संदर्भ में हिंदी साहित्य भाषा-परिहार की वैचारिक आधारभूमि तैयार करता है, क्योंकि यह भाषा को समावेशन और सामाजिक चेतना का माध्यम बनाता है, न कि बहिष्करण का।

शिक्षा व्यवस्था में भाषा-परिहार की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मातृभाषा अथवा परिचित भाषा में शिक्षा प्राप्त करने से विद्यार्थी न केवल बेहतर ढंग से सीखते हैं, बल्कि उनमें आत्मसम्मान और सांस्कृतिक पहचान की भावना भी विकसित होती है। नई शिक्षा नीति 2020 ने बहुभाषिक शिक्षा और मातृभाषा आधारित शिक्षण पर बल देकर इस दिशा में एक सकारात्मक पहल की है। यह नीति यह स्वीकार करती है कि भाषा-आधारित भेदभाव को समाप्त किए बिना समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा संभव नहीं है।

भाषा-परिहार का प्रभाव केवल शिक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन की संभावना उत्पन्न करता है। जब प्रशासनिक प्रक्रियाओं, न्याय प्रणाली और रोजगार के अवसरों में भाषा की बाधाएँ कम होती हैं, तब समाज के विविध वर्गों की सहभागिता बढ़ती है। इससे लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूती मिलती है और सामाजिक असमानताओं को कम करने में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से भाषा-परिहार सामाजिक न्याय की अवधारणा को व्यवहारिक रूप प्रदान करता है। हिंदी भाषा इस संपूर्ण प्रक्रिया में एक सेतु की भूमिका निभाती है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी ने विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संवाद और समझ को बढ़ावा दिया है। हालांकि, यह आवश्यक है कि हिंदी को भी किसी वर्चस्ववादी दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि सहअस्तित्व और बहुभाषिक समन्वय के माध्यम के रूप में देखा जाए। भाषा-परिहार की सच्ची भावना तभी साकार होती है, जब सभी भाषाओं को समान सम्मान और अवसर प्रदान किए जाएँ।

सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में भाषा-परिहार का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि यह भाषा को पहचान और सत्ता के कठोर ढाँचे से मुक्त करता है। यह अवधारणा भाषा को मानव विकास और सामाजिक सशक्तिकरण के साधन के रूप में पुनर्परिभाषित करती है। हिंदी साहित्य और शिक्षा व्यवस्था, यदि मिलकर इस दृष्टिकोण को अपनाएँ, तो वे न केवल भाषाई भेदभाव को कम कर सकती हैं, बल्कि एक अधिक समावेशी, संवेदनशील और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में भी योगदान दे सकती हैं।

अतः चर्चा के इस चरण में यह स्पष्ट होता है कि भाषा-परिहार केवल नीति या व्यवस्था का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और वैचारिक परिवर्तन का प्रश्न है। हिंदी साहित्य और शिक्षा व्यवस्था इस परिवर्तन की धुरी बन सकती हैं, बशर्ते भाषा को सत्ता का उपकरण नहीं, बल्कि संवाद, समावेशन और सामाजिक न्याय का माध्यम माना जाए। इस प्रकार भाषा-परिहार सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक अनिवार्य और प्रभावी उपकरण के रूप में स्थापित होता है।

7 निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन के समग्र विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भाषा-परिहार की अवधारणा सामाजिक न्याय, समान अवसर और समावेशी विकास की स्थापना में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना, सत्ता संबंधों, सांस्कृतिक पहचान और अवसरों के वितरण का एक प्रभावशाली माध्यम है। जब भाषा किसी विशेष वर्ग के वर्चस्व का उपकरण बन जाती है, तब वह सामाजिक असमानता और बहिष्करण को जन्म देती है। इस संदर्भ में भाषा-परिहार एक ऐसी वैचारिक एवं व्यावहारिक प्रक्रिया के रूप में सामने आती है, जो भाषा को बाधा बनने से रोकती है और समाज के सभी वर्गों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने की दिशा में कार्य करती है। इस शोध में यह स्पष्ट रूप से सामने आया है कि भारत जैसे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश में भाषा का प्रश्न केवल शैक्षणिक या प्रशासनिक नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। औपनिवेशिक काल से चली आ रही भाषा-आधारित सत्ता संरचनाएँ आज भी किसी न किसी रूप में सामाजिक और शैक्षणिक असमानताओं को बनाए रखे हुए हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भी अंग्रेज़ी का वर्चस्व तथा भारतीय भाषाओं की उपेक्षा एक बड़े वर्ग को अवसरों से वंचित करती रही है। ऐसे में भाषा-परिहार की अवधारणा इन ऐतिहासिक असंतुलनों को संतुलित करने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरती है।

हिंदी भाषा और साहित्य ने इस दिशा में विशेष भूमिका निभाई है। हिंदी साहित्य, विशेषकर प्रेमचंद, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह और दलित साहित्यकारों के लेखन में भाषा को जनसाधारण की अनुभूतियों और संघर्षों से जोड़ा गया है। इन रचनाकारों ने साहित्य को केवल सौंदर्यबोध का माध्यम न मानकर सामाजिक परिवर्तन और न्याय की चेतना का सशक्त साधन बनाया। हिंदी साहित्य ने हाशिए पर पड़े वर्गों की आवाज़ को अभिव्यक्ति दी और भाषा-आधारित भेदभाव को उजागर कर समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार हिंदी साहित्य भाषा-परिहार की वैचारिक भूमि को मजबूत करता है। शिक्षा के क्षेत्र में भाषा-परिहार की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा में शिक्षा प्राप्त करने से विद्यार्थियों की समझ, आत्मविश्वास और रचनात्मक क्षमता में वृद्धि होती है।

नई शिक्षा नीति 2020 ने बहुभाषिक शिक्षा को प्रोत्साहित कर इस दिशा में एक सकारात्मक पहल की है। यह नीति यह स्वीकार करती है कि भाषा-आधारित समावेशन के बिना गुणवत्तापूर्ण और समान शिक्षा संभव नहीं है। इस संदर्भ में भाषा-परिहार न केवल शैक्षणिक सफलता का साधन है, बल्कि सामाजिक गतिशीलता और सशक्तिकरण का भी माध्यम है। रोजगार और प्रशासनिक क्षेत्रों में भी भाषा-परिहार की अवधारणा समान अवसरों की स्थापना में सहायक सिद्ध होती है। जब योग्यता और दक्षता को भाषा के आधार पर आँका जाता है, तब अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति अवसरों से वंचित रह जाते हैं। भाषा-परिहार इस प्रवृत्ति को चुनौती देता है और यह सुनिश्चित करता है कि भाषा व्यक्ति की क्षमता का मापदंड न बने। इससे कार्यस्थलों पर विविधता, समावेशन और सामाजिक समरसता को बढ़ावा मिलता है।

सामाजिक स्तर पर भाषा-परिहार बहुभाषिक समाज में संवाद, सहअस्तित्व और आपसी सम्मान की भावना को सुदृढ़ करता है। यह अवधारणा भाषाई विविधता को कमजोरी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समृद्धि के रूप में स्वीकार करती है। हिंदी भाषा इस संदर्भ में एक सेतु की भूमिका निभाती है, जो विभिन्न भाषाई समुदायों को जोड़ने का कार्य करती है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी ने भारत की बहुभाषिक संरचना को एक सूत्र में पिरोने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अंततः यह कहा जा सकता है कि भाषा-परिहार सामाजिक न्याय की अवधारणा को व्यवहारिक धरातल पर स्थापित करने का एक प्रभावी साधन है। यह न केवल शिक्षा और रोजगार में समान अवसर सुनिश्चित करता है, बल्कि सामाजिक समावेशन, सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों को भी सुदृढ़ करता है। हिंदी भाषा और साहित्य इस प्रक्रिया में मार्गदर्शक शक्ति के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार भाषा-परिहार एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और समावेशी समाज की स्थापना की दिशा में एक अनिवार्य और सार्थक कदम है।

8 हित-संघर्ष (Conflict of Interest)

प्रस्तुत शोधपत्र पूर्णतः समीक्षा-आधारित (Review Paper) है तथा इसका उद्देश्य भाषा-परिहार, हिंदी साहित्य और सामाजिक न्याय से संबंधित उपलब्ध साहित्य, शोध-अध्ययनों और नीतिगत दस्तावेजों का अकादमिक विश्लेषण करना है। लेखक यह स्पष्ट रूप से घोषित करता/करती है कि इस अध्ययन के निष्पादन, लेखन अथवा प्रकाशन की प्रक्रिया में किसी भी प्रकार का व्यक्तिगत, व्यावसायिक, वित्तीय अथवा संस्थागत हित-संघर्ष नहीं है। इस शोधपत्र में व्यक्त विचार पूर्णतः स्वतंत्र, निष्पक्ष और विद्वतापूर्ण अध्ययन पर आधारित हैं तथा किसी बाहरी प्रभाव या दबाव से प्रभावित नहीं हैं।

9 आभार प्रकट (Acknowledgments)

1. मैं इस समीक्षा-आधारित शोधपत्र के निर्माण में सहायक रहे सभी प्रकाशित शोधपत्रों, पुस्तकों, समीक्षात्मक लेखों, शैक्षणिक पत्रिकाओं तथा नीतिगत दस्तावेजों के लेखकों और संपादकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता/करती हूँ, जिनके विद्वतापूर्ण कार्यों के अध्ययन और संदर्भ से यह शोधपत्र संभव हो सका।
2. हिंदी साहित्य, भाषा-परिहार तथा सामाजिक न्याय से संबंधित विविध शोध-स्रोतों से प्राप्त विचारों और विश्लेषणों ने इस अध्ययन को वैचारिक गहराई और अकादमिक दृढ़ता प्रदान की, जिसके लिए मैं समस्त शोधकर्ताओं का कृतज्ञ हूँ।
3. मैं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, मानविकी एवं भाषा संकाय, केंद्रीय विश्वविद्यालय कर्नाटक के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करता/करती हूँ, जिनके मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और अकादमिक सहयोग से यह समीक्षा-कार्य सुव्यवस्थित रूप से संपन्न हो सका।
4. इस शोधपत्र के संकलन, संदर्भ-संग्रह, सामग्री-संयोजन एवं प्रारूपण में सहयोग प्रदान करने वाले मेरे शोधार्थियों (Research Scholars) के प्रति भी मैं हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता/करती हूँ।
5. अंत में, मैं उन सभी अकादमिक एवं बौद्धिक संसाधनों के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने इस समीक्षा-पत्र को एक संगठित, समावेशी और शोधपरक स्वरूप प्रदान करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया।

संदर्भ सूची

- शर्मा, राकेश. “प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थवाद और सामाजिक चेतना।” इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मल्टीडिसिप्लिनरी स्टडीज़ (IJARMS), खंड 4, अंक 6, 2021, पृ. 45–52.
- कुमार, अनिल. “प्रेमचंद के कथा-साहित्य में भाषा, समाज और सामाजिक यथार्थ।” जर्नल ऑफ लिटरेचर एंड सोशल साइंसेज़, खंड 7, अंक 2, 2022, पृ. 78–86.
- सिंह, प्रवीण. “प्रेमचंद के साहित्य में लोकभाषा का सामाजिक सुधार के उपकरण के रूप में प्रयोग।” रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़, खंड 14, अंक 1, 2023, पृ. 101–108.
- वर्मा, सुमन. “रामविलास शर्मा की भाषा और समाज संबंधी अवधारणा।” इंडियन जर्नल ऑफ लिंग्विस्टिक्स एंड लिटरेचर, खंड 5, अंक 3, 2020, पृ. 33–41.
- मिश्रा, अमित. “भाषा, संस्कृति और सत्ता : रामविलास शर्मा के विचारों का अध्ययन।” जर्नल ऑफ सोशल एंड कल्चरल स्टडीज़, खंड 9, अंक 2, 2021, पृ. 59–68.

- पांडेय, राजेश. “भारत में भाषा-राजनीति और बहुभाषिकता : रामविलास शर्मा के विचारों का पुनर्पाठ।” जर्नल ऑफ इंडियन लैंग्वेज एंड सोसाइटी, खंड 12, अंक 1, 2024, पृ. 1–12.
- त्रिपाठी, मनोज. “भाषा, विचारधारा और साहित्यालोचना : नामवर सिंह का पाठ।” जर्नल ऑफ हिंदी क्रिटिसिज़्म एंड थ्योरी, खंड 6, अंक 1, 2020, पृ. 22–30.
- श्रीवास्तव, कविता. “साहित्यालोचना का औपनिवेशिक विमर्श और नामवर सिंह का दृष्टिकोण।” लखनऊ विश्वविद्यालय शोध पत्रिका (मानविकी), खंड 15, अंक 2, 2022, पृ. 89–97.
- यादव, सुरेश. “हिंदी आलोचना में औपनिवेशिक विरासत और भाषा-विमर्श।” जर्नल ऑफ पोस्टकोलोनियल स्टडीज़ (इंडिया), खंड 8, अंक 1, 2023, पृ. 44–53.
- भारती, कंवल. “दलित साहित्य में भाषा : प्रतिरोध का माध्यम।” जर्नल ऑफ सोशल जस्टिस एंड लिटरेचर, खंड 10, अंक 2, 2021, पृ. 65–74.
- टकभौरे, सुशीला. “दलित साहित्य और भाषा की राजनीति।” हंस, विशेषांक : दलित विमर्श, 2022, पृ. 45–56.
- कांबले, रमेश. “समकालीन दलित लेखन में स्वर, पहचान और भाषा।” इंडियन जर्नल ऑफ दलित स्टडीज़, खंड 5, अंक 1, 2024, पृ. 12–21.
- शर्मा, नीरज एवं गुप्ता, पूजा. “राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारत में बहुभाषिक शिक्षा।” इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड सोशल साइंस, खंड 8, अंक 4, 2021, पृ. 91–99.
- कौर, हरप्रीत. “राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत मातृभाषा आधारित शिक्षा और अधिगम परिणाम।” इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश लिटरेचर एंड सोशल साइंसेज़ (IJELS), खंड 7, अंक 5, 2022, पृ. 312–318.
- राव, सुनीता. “भारतीय शिक्षा में भाषा नीति और सामाजिक समावेशन।” जर्नल ऑफ एजुकेशनल पॉलिसी स्टडीज़, खंड 11, अंक 2, 2023, पृ. 55–66.
- यूनेस्को. ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट : भाषा और अधिगम। यूनेस्को, 2023।
- यूनेस्को. भाषा मायने रखती है : भारत के लिए शिक्षा की स्थिति रिपोर्ट। यूनेस्को इंडिया कार्यालय, 2025.
- “राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत विश्वविद्यालयों में बहुभाषिक कार्यक्रमों की शुरुआत।” द टाइम्स ऑफ इंडिया, 15 जुलाई 2024, शिक्षा अनुभाग, पृ. 6–7.

YOUR DISSERTATION DESERVES RECOGNITION, NOT A PLACE IN A STOREROOM

Publish Your Dissertation as a Book through the Emerging Scholars Series

Transform your thesis or dissertation into a professionally published scholarly work, boosting its academic visibility and impact.

Benefits

-  ISBN Registration*
-  Crossref DOI Assignment
-  ORCID Integration
-  Google Scholar Discoverability
-  Enhanced Citation Opportunities
-  Wider Academic Reach and Recognition
-  Long-Term Preservation and Accessibility

Publication Options

Jnanasetu Repository	Jnanasetu Repository Publication with an ISBN
✓ Crossref DOI Assignment ✓ Online Archiving and Preservation ✓ Academic Visibility ✓ Citations	✓ ISBN Registration ✓ Crossref DOI Assignment ✓ Professional Book Publication ✓ Global Accessibility ✓ Academic Visibility ✓ Citations

Looking to Publish Research Articles?

Researchers and scholars may also submit manuscripts to **Jnanasetu Journals** for quality-focused scholarly publication.

- ✓ Peer-Reviewed Journals
- ✓ DOI Assignment
- ✓ Open Access Publishing
- ✓ Academic Visibility
- ✓ Timely Editorial Processing

We Also Publish

-  Edited Books
-  Scholarly Monographs
-  Conference Proceedings
-  Academic Journals

For more details:

Press	jnanasetupress.com	support@jnanasetupress.com
Repository	jnanaseturepository.com	editor@jnanaseturepository.com
Journals	jnanasetujournals.com	editor@jnanasetujournals.com